* श्रीतारामाभ्यां नमः *

"श्रीसीताराम वचनामृत" के अवलोकन का सौभाग्य मिला। त्रिपाद विभूति नायक परात्पर पूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीजानकीरमणजू के चरण कमल अनुरागी सन्त श्रीसीता-शरणजी प्रिया-प्रियतम प्रेम पगे रस रंग रीति सने भावुक हृदय हैं। मधुराति मधुर दिव्य लीला स्वरूपों के कौतुक हेतु सेवा समर्पित दिव्य वाणी, अत्यन्त मनमोहक शिक्षा प्रद प्रीति वर्द्धक है। सन्त की वाणी सदा रसमयी होती है, क्योंकि वे "रसोवैसः" सिद्धान्त से दिव्य रस का आस्वादन करते रहते हैं।

दिव्य धाम अयोध्या (साकेत) में प्रिया प्रियतम, परिकरों के सुख हेतु नित्य नूतन लीलायें करते रहते हैं। सभी लीलायें प्रकृति से परे उस दिव्यधाम में सदा होती ही रहती हैं। अवतार काल में सर्वजन सुखाय भूतल पर होती हैं। साकेतधाम में श्रीयुगलसरकार के अवतार हेतु परस्पर

सब भाँति मैं हूँ उनका अरु हैं वही मेरे।
हरिजन जो सबको त्यागके निष्काम है मेरा॥

* श्रीराम गीता *

श्रीकिशोरीजोः-हे श्रीप्राणवल्लभ जू! जगत के जाल में फँसे हुये जीवों के उद्धार के लिये ज्ञान श्रेष्ठ है। अथवा कोई और मार्ग श्रेष्ठ है। सो कृपा करके बताइये। वेदों में कहा गया है कि— "ऋतेज्ञानान्मुक्ति" अर्थात् बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं हो सकती है।

श्रीसरकारः-हे श्रीप्राणप्रिया जू! यद्यपि आप सब जानती हैं, तो भी जीवों के कल्याणार्थ आपने जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर मैं अवश्य ही कहूँगा। आपको तो सदा जीवों के उपकार की ही चिन्ता बनी रहती है। आप कृपा और करुणा को समुद्र हैं। अस्तु हे प्रिये! सावधान होकर सुनिये। आज मैं अत्यन्त गूढ़ रहस्य समझाऊँगा। जीवात्मा अज्ञान अहंकार के द्वारा माया के बन्धन में बँधता है। यह मैं हूँ, यह मेरा है, यह तू है, यह तेरा है, बस यही माया का जाल है। इसी जाल का भारी बिस्तार सारे ब्रह्माण्ड में फैला है। मनुष्य का जहाँ तक मन और दृष्टि जाती है, वहाँ तक सब माया ही माया है। इस माया के विद्या तथा अविद्या दो भेद हैं। अविद्या माया जीवों

को अज्ञान में बाँधती है, और विद्या माया ज्ञान के अभिमान में जीवों को फसाती है। दोनों ही माया लोहे और सोने की बेड़ी के समान हैं। इसलिये विद्या और अविद्या दोनों से श्रेष्ठ मेरी भक्ति है। जो सर्वथा स्वतन्त्र है। मैं भक्त की भक्ति से प्रसन्न होकर माया के सभी बन्धन खोल देता हूँ। ब्रह्माण्ड अन्त-रगत सारी रचना रचने वाले ब्रह्मा भी बन्धन में हैं। यद्यपि मैं अनन्त ब्रह्माण्डों का स्वामी हूँ, तथापि भक्तों की भक्ति के बस में होकर उनकी सेवा तक करने लगता हूँ। किन्तु मेरी भक्ति अत्यन्त ही दुर्लभ है। हाँ, यदि मेरे प्रेमी संतों की कृपा हो जाय, तो मेरी भक्ति प्राप्ति हो सकती है। और सदाचार पूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करना, सत्य बोलना, आदि संयम करके मनको बश में करे, महापुरुषों का जीवन सदा-चारमयी होता है, अस्तु उनका अनुगमन करे। अपने गुरुजनों तथा संतों की तन, मन, धन से सेवा करने पर भी मेरी भक्ति प्राप्त हो जाती है। संतों की सेवा का फल है कि-संसारी सभी विषयों तथा सभी पदार्थों से वैराग्य हो जाता है। जब प्रपंच से मन हट जाता है, तब मेरी ओर स्वभाविक आकर्षित होता है। तब वह मेरी लीलाओं में, अत्यन्त अनु-राग करता है। मेरी लीला देखने और सुनने से मेरे रूप में आशक्ति हो जाती है। फिर वह मुझमें

एक नाता दृढ़ करके हमसे प्रेम करता है। मेरे गुण गा गाकर गद्गद होकर पुलकित हो जाता है। नेत्रों से अविरल प्रेमाश्रुधारा श्रवित होती रहती है। हे प्रिये! मैं सत्य कहता हूँ, कि ऐसे प्रेमीभक्त मुझे वस में कर लेते हैं। जिस भक्त के हृदय में, काम-क्रोध-लोभ-मोह-मदादिदम्भ नहीं है। वह भक्त मुझे बहुत ही प्रिय लगता है। मन, वाणी, कर्म से जिसको एक मात्र मैं ही गति हूँ। वह निष्काम भक्त निरन्तर मुझमें ही निवास करता है। और मैं सदा उसके हृदय में निवास करता हूँ।

हम दोउ देह धारे हैं, भक्तों के वास्ते।
साकेत से पधारे हैं, भक्तों के वास्ते ॥ १ ॥
हमको भजै जो जैसा, हम वैसे ही भजैं।
यहि विधि बचन को हारे हैं, भक्तों के वास्ते ॥ २ ॥
जन की सुरुचि बिलोकि के, हम काज सब करैं।
मर्याद को बिसारे हैं, भक्तों के वास्ते ॥ ३ ॥
यद्यपि अघी अबुध मनुज, उपहास हूँ करैं।
सहिवो सोऊ विचारे हैं, भक्तों के वास्ते ॥ ४ ॥
याते करहु चरित्र सो, हरिजन की स्वामिनी।
सब विधि से जो सुखारे हैं, भक्तों के वास्ते ॥ ५ ॥

❋ स्त्री शिक्षा ❋

—— ❋ ——

श्रीरामजी—हे श्रीप्रियाजू ! संसार में बहुत सी स्त्रियाँ आपकी सखी होने की इच्छा करती हैं। अस्तु आप यह बतलाइये कि--किस प्रकार के शील स्वभाव आचरण वाली स्त्रियाँ. आपको अच्छी लगती हैं।

श्रीकिशोरीजी—हे श्रीहृदयेश्वरजू ! मुझे तो अत्यन्त सरल हृदय वाली तथा पवित्र आचरणों वाली स्त्रियाँ प्रिय लगती हैं। इसके विपरीत झूँठ बोलने वाली, कपट से भरी निर्दयता पूर्वक स्वच्छन्द व्यवहार दुराचरण करने वाली स्त्रियाँ नर्क में जाती हैं। यह संसार तो कर्मभूमि है। यहाँ पर कष्ट उठाकर धर्म का निर्वाह करना चाहिये। केवल संसारी सुख भोगना ही, इस शरीर का फल नहीं है। क्योंकि यह जीवन बहुत ही थोड़ा है। शीघ्रातिशीघ्र समाप्त हो जाता है। पाप करके शरीर छोड़ने पर बहुत पछताना पड़ता है। पतिव्रता स्त्रियाँ घर में रहते हुये ही सभी तपस्याओं तथा शुभ कर्म धर्म का फल, केवल पति सेवा से ही प्राप्त कर सकती हैं।

श्री[illegible]रकार—हे श्रीकिशोरीजू ! स्त्रियों के सदाचार का वर्णन कीजिये।

श्रीकिशोरीजी—हे श्रीप्रियतमजू ! सदाचार सम्पन्न स्त्रियों को चाहिए कि प्रातःकाल उठकर प्रथम पतिके चरणों में प्रणाम करें। उसके बाद सभी गुरुजनों की चरण-वन्दना करें। शौचादिक स्नान क्रिया करके शरीर को पवित्र बनाकर अपने घर का व्यवहार सम्हारें। अपने बालकों को शुभ शिक्षा देवें, सदाचार सम्पादन करने वाले ग्रन्थों को पढ़ें। घर के सभी कार्यों को उत्साह पूर्वक आलस त्याग कर करें। भूल से कोई कार्य बिगड़ जाने पर अपनी गलती स्वीकार करलें। किसीसे लड़ाई झगड़ा न करें। सभी परिवार से प्रेम सहित नम्रता पूर्वक व्यवहार करें। किसी अन्य स्त्री से डाह न करें। किसी की निन्दा न करें। किसी को कठोर बचन न कहें। किसी की चुगली न करें। प्रिय तथा कम बोलना ही स्त्रियों का भूषण है। लज्जा पूर्वक शीलस्वभाव सम्पन्न व्यवहार करें। शुद्धता पूर्वक भोजन बनावें। घरके सभी व्यक्तियों को खिलाकर तब स्वयं भोजन पावें। तुलसीदल छोड़कर भोग लगाकर ही भोजन सभी को करावें। तथा स्वयं करें। बिना भोग लगाये भोजन पाने से बुद्धि बिगड़ जाती है। यदि कोई वृद्ध प्राणी बीमार हो जाय, तो उससे घृणा न करें। प्रेम पूर्वक सबकी उचित सेवा करें। पति की आज्ञा का सर्वदा पालन करें। उत्सवों में भी पावन गीतों को गावें। भूलकर

भी अपवित्र गीतों को कभी न गावैं। भक्ति भावना वर्धक सुन्दर गीत ही गाना चाहिए। भजन स्मरण सत्संग में रुचि रखनी चाहिये। सभी मनुष्यों में केवल तीन प्रकार की भावना करना ही पतिव्रता स्त्री को उचित है। अपनेसे छोटे को, पुत्रवत्‌भाव रखकर दुलार करें। अपने समान अथवा अपने से बड़ी अवस्था वाले व्यक्तियों से, भाई सदृश व्यवहार करें। वृद्धावस्था वाले व्यक्तियों से पिता के समान लज्जा पूर्वक आदर से व्यवहार करना चाहिए। पतिव्रत धर्म को सदा दृढ़ता पूर्वक पालन करें। पतिव्रत धर्म के वल से ही दमयन्ती ने अपने खोये हुये पति को प्राप्त किया। और सावित्री ने मरे हुये अपने पति को, पतिव्रत धर्म के वल से ही जिला लिया था। अस्तु स्त्रियोंके लिये पतिव्रत को दृढ़ता पूर्वक पालन करते हुये, धार्मिक ग्रन्थ गीता श्रीरामायण-भागवत आदि को श्रवण करना चाहिए। कथा सुनने से पतिव्रत धर्म में दृढ़ता होती है असत वार्ता न कभी करें, न सुनें। प्रेम पूर्वक कीर्तन करने से मन एकाग्र होता है। मेरी लीलायें ध्यान में उदय होता हैं। देह को आत्मा नहीं मानें। यह एकदिन नष्ट हो जाती है। संसारी सुखों में आशक्त नहीं होना चाहिए। तप से तेज बढ़ता है। यथावत् पतिव्रत का पालन करने पर, श्री-मन्दालसा-तथा गार्गदेवीके समान जगत विख्यात

होकर, अन्त में मेरे धाम में आकर मेरी सखी बन जाती है।

\+ + × × × ×

नाम महिमा

श्रीकिशोरीजी:—हे श्रीप्राणवल्लभजू ? यद्यपि आपके नामकी महिमा शास्त्रों में अनेक प्रकार से कही गई है। तथापि हमारे इन परिकरों की प्रवल इच्छा है कि आप अपने श्रीमुख से नाम की कुछ महिमा सुनाने की कृपा कीजिये।

श्रीरामजी:—हे श्रीप्राणवल्लभा जू ! इस अपार संसारसागर की दुखद तरङ्गों में अनादि कालसे भटकते हुये, दीन हीन प्राणियों के लिये, इस कठिन कलिकाल में, हमारी भक्ति तथा हमारा नाम ही, जीवों के लिए एक मात्र अनन्यतम साधन है। नाम के अतिरिक्त प्राणियों के उद्धार का, ऐसा सुगम तथा सुलभ उपाय और नहीं है। संसारमें जितने भी प्राणीहैं। वे सभी हमारे नाम के जप तथा भक्ति के समान रूप से अधिकारी हैं। हमारा नाम अनुपम गुणों का भण्डार है। हमारे नामके प्रभावको, शंकरजी भली भाँति

जानते हैं। हमारे नाम के ही बलसे, हलाहल विष पीलेने पर भी, शंकरजी को अमृत के समान फल मिला। हमारे नाम के ही बलसे, गणेशजी प्रथम पूज्य हुये। हमारे नाम जपने में, कर्म, वीरता, धीरता, योग, ज्ञान, चतुरता, और सम्पत्ति तथा पवित्रता आदि की कोई आवश्यकता नहीं है। हे श्रीप्राणप्रिये! हमारी भक्ति की गति अकथनीय है वह समझने में ही सुखदेने वाली है। हे प्रियतमे! हमारी भक्ति वर्षाऋतु है। और सब भक्तगण ही धान हैं। हमारे नाम में रा और म, ये जो सुन्दर अक्षर हैं। वे ही सावन-भादौं महीना हैं। हे प्राणवल्लभे! ये सभी को स्मरण करने में सुलभ तथा सुगम हैं। परमसुख प्रद हैं। हमारी भक्ति रूपी नायिका के कर्ण भूषण हैं। और हमारेभक्तों के मन रूपी कमल को खिलाने के लिये सूर्य हैं। और बाद में भ्रमर बनकर रसपान भी करते हैं। हे प्रिये! सदा जो हमारे नाम का स्मरण करता है। उसपर कलिकाल कभी भी अपना प्रभाव नहिं जमा सकता है। जो जीव एकबार भी सादर प्रेम पूर्वक मेरे नामका स्मरणकरता है। उसके जन्म जन्मान्तरों के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। और जो रातदिन प्रेमपूर्वक मेरे नाम का जप करता है, और हमारे नाम को ही अपना सर्वस्व समझता है। पुनः रातदिन दूसरे के ही कल्याण करने में, अपना जीवन

बिताता है। ऐसे भक्तों के श्रीचरणों की रज जहा- जहाँ पड़ती है, वहाँ की पृथ्वी तीर्थ रूप बन जाती हैं। उसके दर्शन मात्र से जन्म जन्मान्तरों के किये हुये, सारे पाप नष्ट हो जातेहैं। हमारे नामको जपने वाले, फिर कभी भी माया के चक्कर में नहीं पड़ते। कलिकालमें हमारा नाम ही सर्व मनोरथों का दाता है। तथा परलोकमें हितैषी और इस लोक में माता-पिता है।

कौन सताय सकै तेहि को मम नाम पियार अधारहै जाको।
दीन हलाहल पान कराय किया गुण सो सुखपाय सुधाको ॥
बाँधिके बारि डुबाय दियो अग्निहुँ मैं पुनि हिरणाकुश ताको
नाम जपे के प्रताप ते देखहु भो प्रह्लाद को बार न बाँको ॥
जोफल कोटिन यज्ञ किये अरु जोफल मक्र प्रयाग नहाये।
जो फल धामन दर्श किये, अरु जोफल क्षेत्रनवास कराये ॥
जो फल योग अखंड किये अरु जो फल पूरण नेम निबाहे।
जो फल दान अमान दिये सोफल ममनाम सकृत एक गाये॥

दोहा-योग, यज्ञ, व्रत, दान, अरु, सब तीरथन सु बास।
जो प्राणी सादर करे, हिय भरि परम हुलास ॥१॥
तिन सब ते अगणित गुणा लाभ लिये मम नाम।
मम सेवा सुख पावहीं, होवै पूरण काम ॥ २ ॥

नाम रसिक जो भक्तजन, मोहिं प्रिय प्राण समान।
योग क्षेम तिनकी करौं, निजकर अति सुखमान ॥३॥
जो सुमिरै अति प्रेम से, सादर मेरो नाम।
तिनके हृदय निकुंज बसि, मैं पाऊँ विश्राम ४॥

❁ पावस सम्वाद ❁

श्रीकिशोरीजी—हे श्रीप्राणनाथ जू! आप देखिये तो सही, ये नदियाँ पावस ऋतु में, कैसे कल्लोल करती हुईं, सागरोन्मुख होकर द्रुत,गामिनी हो रही हैं।

श्रीरामजी--हाँ हाँ प्रिये! ठीक इसी प्रकार, जीव मुझसे मिलने की आतुरता से, मेरी ओर आता हुआ शोभा को प्राप्त होता है।

दोहा—जिमि सरिता द्रुत गामिनी, मिलत सिन्धुमें जाय।
अति स्थिता प्राप्तकर, तेहि महँ जात समाय ॥१॥
ऐसेहिं चेतन अंश मम, मोहिं मिलत हर्षाय।
परमशान्ति अनुभव करत, सबदुख द्वन्द भुलाय ॥२।
सुख सागर में मगन हो, पावत सहज स्वरूप।
सतचित आनँदमय सुतन, पावन अमल अनूप ॥३॥
नित अविनाशी जीव यह, चिन्मय अंश हमार।
निज भ्रम वश माया फसेउ, पायेउ क्लेश अपार ॥४

वार्ता—जिस तरह अगाध जल में, मछली सुखी रहती है। उसी प्रकार सकल सौन्दर्य्य माधुर्य्य प्रेमरस सुख सुधा सिन्धु मुझको पाकर यह जीव पूर्णतया सुखीहो जाताहै।

श्रीकिशोरीजी—हे श्रीप्राणवल्लभ जू! नदी का जल सागर में मिलकर अपना आस्तित्व अलग नहीं रखता है। तो क्या जीव भी आप से मिलकर एक ही हो जाता है। अथवा अलग ही आस्तित्व रहता है।

रामजी-हे प्राणप्रियतमे! यह जीव तो सनातन मेरा चिदांश है। मेरे सदृश्य यह भी सच्चिदानन्दस्वरूप ही है। अनादिकाल से मेरी दिव्यातिदिव्य माया से मोहित हुआ मेरे उपभोगार्थ होते हुये भी अलग ही रहता है। नित्य मुक्त, मुमुक्षु, कैवल्य, बद्ध, ये पाँचप्रकार के भेद शास्त्रों में स्थिति भेद से कहे गये हैं। तत्वतः सब परमात्मस्वरूप ही है। किन्तु मेरी लीलार्थ सनातन से अलग ही है। योगी ज्ञानी इत्यादि परमात्म व ब्रह्म स्थिति में पहुँचकर अलग आस्तित्व नहीं मानते, पर रहते अलग ही हैं। अत्यन्त तदा-कारता के कारण उन्हें एकत्व का बोध हो जाता है। वास्तव में पूर्णतया एकीकरण नहीं होता है। समय पर उनसे भी अपनी लीलाका कार्य करवाता हूँ। यदि सम्यक प्रकार एकता हो जाय, तो पुनः मेरी लीला का कार्य कैसे करें। परन्तु हे प्यारी जू! जो मेरे शर-

णागत भक्त हैं। वे तो मेरे दिव्यधाममें सदा सच्चिदानन्द विग्रहवान होकर, परमैकान्तिक कैंकर्य परायण हो, मेरे दर्शन स्पर्श क्रीड़ा इत्यादि सुख का अनुभव करते हैं। अर्थात् अमृत होकर अमृत का आस्वादन करते हैं।

श्रीकिशोरी--हे मनमोहनराजिवलोचन जू! नदियाँ जब समुद्र की ओर दौड़ती हैं। तब समुद्र उनके मिलने को आतुर नहीं होता है। तो क्या आपका स्वभाव भी ऐसा ही है।

श्रीरामजी--हे श्रीविदेहराजनन्दिनी जू! ऐसी बात नहीं है, मेरे सन्मुख जीव आया कि, मैं उसके करोड़ों जन्मों के पापों को तुरन्त ही नष्टकर, ज्ञान प्रदान करता हूँ।

सन्मुख जीव होइ मम जबहीं। जन्मकोटि अघ नाशौं तबहीं॥
गुणअवगुण बिचार नहिंकरऊँ। ज्ञानभक्ति सुखरसहिय भरऊँ
अतिद्रुत वाको साधु बनाई। योग क्षेम नित करौं सिहाई॥
मृषा न कहौं सत्य ममबानी। सुनहु प्रिये हियमें सुखमानी॥

दोहा—सन्तत जनके साथरहि, पल पल करत सम्हार।
परमानन्द प्रदानकरि, पाऊँ मोद अपार॥ १॥
अति अनन्य बनि तजि जगत, भजन करे निशियाम।
योग क्षेम तेहि की करौं, देउँ परम अभिराम॥ २॥

जहाँ भक्त मम पग धरैं, तहाँ धरौं मैं हाथ।
जनको दुखित न लखि सकौं, कबहुँ न छोड़ौं साथ॥३
मुझसे मिलने हेत जो, जीव धरै पग एक।
वासे मिलने हेत तब, मैं पग चलौं अनेक॥४॥

च।बोलाछंद–मेरे दर्शन लागि जीव जब,चलै एकपग आगे।
मैं वासो मिलने हित धाऊँ कोटिन पग अनुरागे॥१॥
जलभरि नयन सप्रेम हमारो एकहु नाम उचारे।
विनामोल बिकजाऊँ तेहिकर वापर सर्वस वारे॥२॥
परिहर आश भरोस निरन्तर जो मुझमें अनुरागे।
वाके वश होरहौं सदा सँग परम प्रेम रस पागे॥३॥
जो भरि कण्ठ कहै जीवनधन तावर हौं बलिहारी।
तन मन प्राण करौं तेहि अर्पण हूँ मैं दृढ़ व्रतधारी॥४॥

वार्ता:—हे श्रीप्राणेश्वरी जू! भला आप देखिये तो सही, बनमें ये मोर गण बादलों को देखकर नाचतेहुये कितने अच्छे लगते हैं।

श्रीकिशोरीजी:—हे श्रीहृदयहार जू! जिसे आप मोरगण अर्थात् अपना जन कहदिये, उसका सौन्दर्य्यता को क्या कहना है। वह तो त्रिभुवन भूषण बनजाता है। हे प्यारे जू! मोर की ही तरह आपके प्रियभक्त, आपका त्रिभुवनमोहन अनन्तकाम, दर्पहारी श्यामसुन्दर स्व-

रूप को देखकर, मुग्धहोजाते हैं। और प्रेमसे मतवाले होकर नृत्य करने लगते हैं।

दोहाः—घन घमण्ड नभ में निरखि, नच्यो प्रेम मद मोर।
नचत भक्त लखि आपको, तैसे प्रेम अथोर ॥ ५ ॥

श्रीरामजीः—हे श्रीप्राणप्यारी जू! आपने तो मुझे बादलों के समान सुन्दर कहकर मेरी हँसी की है। बादलकाले होते हैं, मैं तो विश्वविमोहन हूँ।

श्रीकिशोरीजीः—नहीं नहीं प्यारे जू! मैंने तो आप की बड़ाई की है। बादल जल बर्षाकर सर्व जीवों के प्राण की रक्षा करते हैं। अर्थात् अखिल विश्व को जीवन-दाता हैं। इसी प्रकार आपभी अपने भक्तों पर, कृपा दृष्टि की वृष्टि करके, सदायोगक्षेम करते हुये, शाश्वत, अमृतमय सुख प्रदान करते हैं।

श्रीरामजीः--नहीं-नहीं प्यारी जू! बादल तो बिजली गिराकर, पृथ्वी में वनस्पतियों को हानि पहुँचाते हैं। आपने परोक्षमें हमें कठोर हृदय वाला निर्दय कहा है।

श्रीकिशोरीजीः--हे नाथ! आपको तो मैंने शत्रु विनाशक, दुष्ट दलन बताया है। हे प्यारे जू! संसार में गो, ब्राह्मण, पृथ्वी, तथा भक्त और देवताओं को दुख देने वाले राक्षस हैं। उनको नाश करने के लिये, आप अपने से बिजली के समान शक्ति प्रगट करके, सभी खलों

का दमन करते हैं। और भक्तों के कामादिक भीतरी शत्रुओं को भी संहार किया करते हैं। भक्तभयहारी आपकी सदा जय हो।

श्रीरामजी:--हे हृदयानन्दवर्धनी श्रीप्राणप्रियतमाजू ! तब तो आपने मुझे क्रूरकर्मा कहा है। जैसे कि बादल ओलों को धारण करते हैं। और समय पर पृथ्वी में गिराकर मनुष्यों के खेत, घर, इत्यादि आवश्यक वस्तुओंको नष्ट कर देते हैं।

श्रीकिशोरीजी:--नहीं नहीं प्यारे जू ! ऐसानहीं है, मैंने तो आपका ईशत्व वर्णन किया है। जैसे बादल ओला बर्षाकर खेती को नष्ट कर देते हैं। किन्तु सूखे बन में पड़ने से जब ओले पिघलते हैं। तो पानीबनकर उस स्थलपर हरी हरी घास उगाकर, बन को सुशोभित करदेते हैं। बनपशुओं को भरपेट खाने को, चारा हो जाता है। इसी प्रकार आपभी सर्वप्राणियों को, उनके कर्मानुसार फल प्रदान करते हैं आपने ही तो कहाथा कि-

कालरूप तिनकहँ मैं भ्राता। शुभ अरु अशुभ कर्म फलदाता

हे सर्वेश्वर जू ! आपकी सदा जय जय हो।

श्रीरामजी:--हे चित्ताकर्षणी श्रीप्यारी जू ! धन्य है आपकी वाक्य चातुर्यता, एवं माधुर्यता की। हे प्यारी जू !

वादल और विजली की उपमा अगर हमारी और आपकी देदी जाय तो क्या प्रेमियों को अहलाद प्रदा-यक न होगा। अवश्यमेवही आनन्द प्रद होगा।

दोहा:-हम घन वनि बर्षे प्रिये, तुम धरि विद्युत रूप।
चमकि दमकि प्रेमिनहृदय,दीजिय स्वाद अनूप ॥६॥
कृपादृष्टि की वृष्टिकरि, प्राणप्रिये भरि प्यार।
हेगुणशील उजागरी, सुखी करिय संसार ॥७॥
प्यारी कृपाकटाक्ष लहि, जगत बनै रसरूप।
हम दोउकी लीलाललित, दे सुख स्वाद अनूप ॥८॥

❀ नवधा भक्ति ❀

श्रीरामजी:--हे मेरे परमप्रिय भक्तवृन्द आपसब सावधान होकर सुनिये। मैं आपलोगोंको, नवधाभक्तिकी व्याख्या सुनारहा हूँ। मुझे भक्तिपरमप्रिय है। भक्ति करनेवाले भक्तों के मैं बिवश रहता हूँ। उस भक्तिके नौ भेद (अंग) हैं। यही नौ सोपान हैं। इनपर भक्तजन क्रमशः एकएक करके, उत्तरोत्तर चढ़कर उत्तीर्ण होते हैं। तत्पश्चात् साधनातीत प्रेमापरा भक्ति प्राप्त होती है। मेरे परमप्रिय भक्त एवं संत महर्षि जो मेरेरहस्य को भली भाँति जानते हैं। ऐसेसर्वज्ञ महापुरुषोंके सत्संगमें स्वाभाविकप्रीतिहोना, यह भक्तिका प्रथम

अंग मुझे प्राप्तकरने का प्रथम-साधन है। इसके बिना, दृढ़अनुराग नहीं होता। यथा--

दोहा-बिन सत्संग न ममकथा, तेहि बिन मोहन भाग।
मोह गये बिन ममचरण, होइ न दृढ़ अनुराग ॥१॥

अर्थात् बिना साधु संग के, मेरी कथा सुनने को नहीं मिलती, और मेरीकथा बिना सुने मोहका नाश नहीं होता है। जबतक मोहका नाश नहीं होता, तबतक मेरेचरण में दृढ़प्रेम नहीं होता, अस्तु-प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा। और मेरे नाम, रूप, लीला, धामादि, गुणानुवाद यश के कीर्तन करने, और सुनने में स्वाभाविकप्रेम होना यह दूसरीभक्ति है। यथा-
दूसर रति ममकथा प्रसंगा॥

श्रीसद्गुरुभगवान के श्रीचरणकमलोंकी सेवा, अभिमान त्यागकर करना, अपने मानापमान का ध्यान न देना, यह तीसरीभक्ति अथवा तीसरासाधन है। निष्कपटभाव से मेरेगुणानुवाद को गान करना, यह चौथीभक्ति या चौथा साधन है। भक्तिका वीजस्वरूप जो मेरा युगलमन्त्रराज है, उसको जप करते हुये मुझमें दृढ़विश्वास रखना, वेदने इसे पाँचवीं भक्ति या पाँचबा साधन कहा है। यथा-

मन्त्रजाप मम दृढ़ विश्वासा। पंचमभजन सो वेद प्रकासा॥

मननशील होना, दयालूहोकर सर्वेन्द्रियों के व्यवहार को क्रमशः संकोच करतेहुये, इन्द्रिय दमन, शास्त्रानुसार वैराग्यके यावतकर्मों को यथावत् करना, और सर्वदा सज्जनों के धर्मका पाल करना, इत्यादि नवधाभक्ति की छटीभक्ति या छटा साधन है। सब प्राणियों को मेरे स्वरूप मानै, एवं मैं ही सर्वपदार्थों में चेतनरूप से व्याप्त हूँ। इसप्रकार मुझे ही सर्वत्र देखै। सन्तमहात्माओं को मुझसे भी पूज्य जानकर, उनके श्रीचरणों में प्रेम पूर्वक मन लगाना, यह सातवीं भक्ति या सातवाँ साधन है। शारीरिक भरण पोषण के लिये, यथा प्राप्त पदार्थों में ही पूर्ण सन्तोष करना, दूसरे के दोषों को स्वप्न में भी न देखना न कहना, यह आठवीं भक्ति या आठवाँ साधन है। नवमी भक्ति साधनों का अन्तिम अंग है, इस साधन के प्रभाव से प्राणी, मेरा ही अंग बनजाता है। सबसे सरल स्वभाव होकर हर्ष बिषाद रहित, उदासीन वृत्ति को धारण करके, केवल मुझे ही अपना सर्वस्व जाने, तथा मेरी ही आशा भरोसा और चितवन करै। उसे भुक्ति मुक्ति दोनों ही करतल गत आमलक समान होजाती हैं। मुझ में अनन्य भाव रखकर, मेरे नाम का जप करना, यह मेरी पराभक्ति को प्राप्त करनेका नवम साधन या नवमी भक्ति हैं। यथा-

नवम सरल सबसन छलहीना। ममभरोस हिय हर्ष न दीना॥

इस प्रकार जब साधन सफल होजाताहै। तब अति-विलक्षण साधनातीत, प्रेमापराभक्ति प्राप्त होती है। तभी जीव सभी प्रकार पूर्ण काम होता है। और भक्ति के पीयूष कुण्ड में निमग्न रहता है।

जाति पाँति कुलधर्म बड़ाई। धनबल परिजनगुण चतुराई॥
भक्तिहीन नर सोहै कैसे। बिन जल बारिद देखिय जैसे॥

वार्ता:—उत्तमजाति में जन्म लेकर, उत्तमसमाज में रहकर, उत्तमकुटुम्ब को पाकर, अनन्त ऐश्वर्य, अपार पराक्रमशाली, परमचातुर्यता, सर्वोपमायोग, सर्वगुणालंकृत, एवं परम माननीय होने परभी, मेरीभक्ति से बिहीनप्राणी, उसीप्रकार अशोभित होते हैं। जैसे जल के बिना बादलों की कुछ भी बड़ाई नहीं होती है। ये धन मदोन्मत्त परमवाचाल, मेरीभक्ति से बिमुख अज्ञानीजीव, अपने ऐश्वर्य के प्रभावसे, परधन पर-दारा अपहरण करने में दत्तचित्त रहते हैं। और काम क्रोधादि जन्य दुर्मति से, अधोगति में पतित होते हैं। अस्तु मेरी इन नौप्रकार की भक्तियों में से, जिसमें एक भी हो। स्त्री हो पुरुष हो अथवा चराचर जीवों में से कोई भी हो, वह मेरा परम प्रिय है। भक्तों के लिये मैं सबकुछ करता हूँ।

मैं भक्तोंके हितकारण ही बहुरूप बनाया करता हूँ।
निजदिव्यधामका सुख तजकर पृथ्वीपर आया करता हूँ॥१

हैं भक्त मेरेप्राणों के प्राण मैं उनका प्राणपियारा हूँ।
वह हैं मुझमें मैं हूँ उनमें क्षणभर न भुलाया करता हूँ ॥२॥
भक्तोंका काम बनाऊँ मैं सर्वस्व निछावर कर अपना।
है काम हमारा एक बड़ा भक्तों का नाम सदा जपना ॥३॥
छानी छाऊँ पानी लाऊँ बनकरमशालची साथ फिरूँ।
किस तरह रिझाऊँ भक्तोंको हरसमय उसीका ध्यान धरूँ॥४
जो पत्रपुष्प फल वो देवैं अति प्रेम से खाया करता हूँ।
भक्तों के सुख को देख देख फूला न समाया करता हूँ ॥५॥
भक्तों का हूँ भक्तों का हूँ यहनाम धराया करता हूँ।
भक्तों का हूँ मैं कर्जदार यह कर्ज चुकाया करता हूँ।मैं०६॥

* झूलन सम्बाद *

श्रीसरकारः—हे श्रीप्राणवल्लभे ! देखिये तो सही, आज सावन का महीना कैसा सोहावना लगरहा है। आकाश में काले काले बादल, उमड़घुमड़ कर छाये हुये हैं। कभी कभी बिजली चमकती है। पानी का फुहारा पड़रहा है। रसाल के विशाल वृक्षों पर, नाना प्रकार की ललित लतायें लटकती हुई लहरारही हैं। जिनमें नव पल्लव युक्त फूल खिले हुये हैं। उन लताओं का बितान परम शोभायमान होरहा है। विपुल वाटिकाओं में नाना प्रकार के फूलों से स्पर्श

करके, शीतल मन्द सुगन्धित वायु चल रही है। कहीं पर लताओं के परम रमणीय कुंज बने हैं। जिनमें मंजुल मधुर मयूर नृत्य करते हुये, मेघमाला की गर्जन सुनकर, अपनी परम प्रिय मधुरातिमधुर सरस वाणी से, शोर मचारहे हैं। श्रीसरयूजी के किनारे पर, अनेकानेक वृक्षों के ऊपर, नाना प्रकार की लतायें, पुष्प पल्लवों से युक्त लहराती हुईं, चित्त को प्रफुल्लित कर रहीहैं। अस्तु यह सब साज समाज देखकर, मेरे मनमें झूला झूलने की उमंग उठरही है।

दोहा–प्राणप्रिये हृदयेश्वरी, लखहु घटा घनघोर।
त्रिविधिवायु मन भावनो, मनमें उठत हिलोर ॥१॥
मधुर मधुर घन गर्जहीं, बोलिरहे बन मोर।
सावन मनभावन सुखद, झूलन चलिय हिंडोर ॥२॥
हे ममप्राण सजीवनी, सखियन जीवन प्रान।
झूलन हेत पधारिये, भरि मन मोद महान ॥३॥
सखियन आयसु दीजिये, झूलन साज सजाय।
प्रमुदित झूलि झुलाय के, देवैं रस बर्षाय ॥४॥

* रसिया *

अहो प्रिया यहिछण अवलोकिय कैसी सावन केर बहार।
सावन केर बहार चहुँदिशि बुन्दन पड़त फुहार ॥

कारी कारी घटा सोहाई, उमड़ि घुमड़ि नभ ऊपर छाई, दिन में मनहुँ निशा प्रगटाई। बिजुली चमकत अरु घन गर्जतशीतल बहत बयार ॥ अहो० १ ॥

घनगर्जन सुनि अतिसुख पाई नृत्यत मोर हृदय हर्षाई, लखि ममंमन आनन्द समाई। बोलत मधुरे बयन सरस प्रिय पावत मोद अपार ॥ अहो० २ ॥

कोयल कुहु कुहु शब्द सुनाई, पपिहा पिउ पिउ रटनि लगाई, तरुपर ललित लता लहराई। दादुर अतिसय शोर मचावत हुलसत हृदय हमार॥ अहो० ३ ॥

हे गुणशील स्वरूप उजारी, झूलिय मम अंशन भुज धारी, पाइय मनमें मोद अपारी। निरखि निरखि तव रूप माधुरी रहौं सदा वलिहार ॥ अहो० ४ ॥

श्रीकिशोरी जू श्रीप्रीतम जू से:—

दोहाः-सुनिय रँगीले रसभरे, रसिया राजकुमार।
झूलिय परम प्रमोद पगि, हौं छवि पर वलिहार ॥

❃ रसिया ❃

लखिय प्राणधन रसिक रँगीले मंजुलरूप अनूप उदार।
रूपअनूप उदार छवीले मम जीवन आधार ॥ १ ॥
देखिय बनप्रमोदकी शोभा,जाहि देखि ऋतुपति मनलोभा।
सततनिवास करत यहि बनमें पावत मोद अपार ॥ २ ॥

ललित रसाल बिशालअनूपम्, लताबितान तने छबिरूपम् ।
कलित कदम्ब किशोर सोहावन, मोद बढ़ावन हार ॥ ३ ॥
घनगर्जन सुनि दादुर मोरा, नृत्यत बोलत होवत शोरा ।
झींगुर झन झन शब्द सुनावत, पपिहा पिया पुकार ॥ ४॥
हे गुनशील स्वरूप उजागर,मनमोहन रसनिधि सुखसागर ।
झूलिय गलभुज डारि रंग रँगि बरसाइय रस धार ॥ ५ ॥

श्रीकिशोरीजी:—हे श्रीप्राणवल्लभजू ! आपका बिचार बहुत अच्छाहै । जिसमें हमारे सभी समाजको, सुख तथा रस की प्राप्ती होगी । हे श्रीहृदयरमण जू ! इस समय बनमें चारों ओर अपार हरियाली देखकर, मेरे मनमें भी उमंग उठ रही है हे रसिक वर ! सुनिये सुनिये, देखिये तो सही, यह कोयल कैसी कल्लोल मचारही है । चारों ओर सर्वत्र दादुरों का शब्द, कितना प्रिय लगता है । और लता निकुंजोंमें मोरगण,नृत्य करते हुये कितने प्रिय लगतेहैं । बादलों की गर्जना सुनकर, परमानन्द पारहे हैं । ऐ सखियो ! श्रीप्राणनाथ जू झूला झूलने की इच्छा कर रहे हैं । अस्तु तुम सब शीघ्र झूलन की तैयारी करो ।

सखी— हे श्रीप्रिया जू ! पावस की छटा और मेघ की घटा देखकर, हम सबों ने बड़े उत्साह के साथ झूलन की तैयारी की है । अस्तु आप दोनों कृपा करके शीघ्र झूलन कुंज में पधारिये ।

श्रीरामजीः--   ❀ कजरी ❀

❀ हरि हरि लखहु प्रिया जू मोंपर सखियन जादू डारा रे।
हरि हरि मिथिलानिनि ने नयन बान हँसिहँसि के मारा रे॥
हँसि हेरनि बोलनि प्यारी, मेरो मन बुधि चित हारो।
हरि हरि तिरछे नयन चलायमोहिं निज वश करि डारा रे॥
नव सत शृङ्गार सजाई, नख सिख लौं ललित लोनाई।
हरिहरि निरखि माधुरी मगनभयो मैं तन मन वारा रे॥
सुन्दर हिंडोल सजायो, मो कहँ अति प्यार झुलायो।
हरि हरि गाय कजरिया सावन ममउर घर करि डारा रे॥
कोइ मेघ मल्लार सुनाई, नृत्यहिं हँसि भाव बताई।
हरि हरि बाँधि प्रेम की डोरि नचायो विविध प्रकारा रे॥
गुण शील स्वरूप उजारी, अबकरहु कृपा सुकुमारी।
हरि हरि जीवन मूरि हमारि सदा रहिये गलहारा रे॥

❀ श्रीप्रिया जू का मान ❀

— ❀ —

पदः- प्रीतम जू क्यों बात बनायो।
मैं जानौं तव कुटिल नीति सब,हमें न अब भरमाओ॥
हम न सुनेंगी बात रावरी, जनि परपंच बढ़ाओ।
जाइय रसिया जहाँ रमै मन, तेहि रस रंग रँगाओ॥

मन में और कहत बाहर कछु, मृषा प्रेम दर्शाओ।
बचन चातुरी जाल बिछाकर, ममम मन मृगहिं फसाओ॥
अन्तर बाहर की मैं जानौं, क्यों इमि वचन सुनाओ।
हे गुणशील नवलनागर प्रिय, अबजनि मोहिं खिझाओ॥

पदः— हो तुम श्याम बड़े चित चोर।
हम सी भोरिन परकरि टोना, छलत फिरत नित राजकिशोर॥
मृदु मुसुकाय बचन कहि मीठे, करि स्वारथ अपनो रसबोर।
जात चले पिय औरन के घर, देत हमैं पुनि दर्शन भोर॥
को करिहै विश्वास तुम्हारो, समुझि रावरे गुण गण जोर।
असकहि चितै हँसी रसमाला, निरखति मुखछवि दृगकी कोर
पिय छलिया बड़े शिर मौर, मैं तोरे सँग ना झूलिहौं।
अति कठोर पिय पीर न जानत, मोसे करत बर जोर॥
बड़े बड़े झोंका देत रसिकवर, जिय डरपत अति मोर।
बरजो नहिं मानत रस लम्पट, अधिक अधिक झकझोर॥

❋ श्रीप्रीतमजूका श्रीप्रियाजू को मनाना ❋

दोहाः—हे मम प्राणाधिक प्रिये, जीवन मूरि हमार।
कृपा दृष्टि की वृष्टि कर, हँसि हेरिय एक बार॥ १॥
निरखे बिन मुख चन्द्र तव, निमिष कल्प सम मोहि।
बार बार मैं करि सपथ, सत्य बतावौं तोहि॥ २॥

पदः—काहे मान कियो सुकुमारी।
कियो कौन अपराध रावरो, कहिये राजदुलारी ॥
मैं पालौं निशदिन तुम्हरी रुचि, सुरुख निहारि तिहारी।
अर्धनिमेष अनंत कल्प सम, तुम बिन बीतत प्यारी ॥
छमि अपराध प्रसन्न बदन हो, झूलिय गल भुज धारी।
पायँ परौं कर जोरि मनावौं, अब जनि रूठो प्यारी ॥
हौं बलिहारी सदा तिहारी, सुनिये बात हमारी।
अब करि कृपा कोर अवलोकिय, मम दिशि प्राण अधारी ॥
हम तुम दोउ की देह प्राणइक, निज जिय देखु बिचारी।
हे गुणशील रूप गर्वीली, श्रीमिथिलेश दुलारी ॥

पद—प्रिया जू करिय कृपा की कोर।
बार बार पगपरौं छबीली, विनय करौं कर जोर ॥
तव मुखचन्द्र सुधा आशिक नित, मेरे नयन चकोर।
बिन तव रूप सु छवि अवलोके, विरह अधिक झकझोर ॥
हँसि हेरो लगि कण्ठ प्यार सों, करि दीजै रस बोर।
हे गुणशील सिन्धु अब झूलिय, गरभुज धरि दृग जोर ॥

पदः—राजकिशोरी चैन न आवै।
तुम बिन नीरस जीवन मेरो, रहिरहि के जियरा घबरावै ॥
तव हँसि बोलनि मिलनि सुरति करि, मेरोहियराहूक मचावै।
हिलिमिलि झूलन अंकमाल की, मेरोमन रहिरहि ललचावै ॥

तुमसे विमुख भये सब रूठे, कोऊ मम नियरे नहिं आवै।
अब मिलने की चाह प्रिया से, कोइ रस रूप हमें पहुँचावैं ॥

* श्रीअवध धाम की महिमा *

श्रीकिशोरीजीः—हे आत्मनाथ श्रीप्राणजीवन धन जू ! मेरे प्रिय परिकर वृन्द यह जानना चाहते हैं कि-श्रीअवध धाम का अवतार, इस धरा धाम पर कैसे हुआ। और श्रीअवध की महिमा कैसी है।

श्रीसरकारः—हे श्रीहृदयेश्वरी जू ! आप परम प्रवीणा हैं। यद्यपि श्रीअवध की महिमा, सुनने की प्रधान रुचि तो स्वयं आप की ही है। किन्तु परिकरों का बहाना बनाती हैं। यह आप की चातुर्यता है। मैं तो सदा हो आपकी रुचि का पालन करता हूँ, अस्तु आप श्रीअवध की महिमा तथा उत्पत्ति को श्रवण कीजिये। प्राणवल्लभे ! यह श्रीअवधधाम, दिव्य सच्चिदानन्द स्वरूप है। यद्यपि यह स्वयं ही, भक्तों पर अनुग्रह कर के प्रगट होते हैं। और फिर अपने ही आप, तिरोहित भी हो जाते हैं। इस लोकमें इनके प्रगट होने की गाथा मैंने श्रीगुरुदेवजी महाराज से, कई प्रकार सुनी है। उनमें से एक कारण मैं आपसे कह रहा हूँ। श्रवण कीजिये। सृष्टि के आदि में, श्रीब्रह्माजी के

पुत्र, श्रीस्वायंभू मनुजी को, श्रीब्रह्माजी ने सर्व प्रथम, धराधाम का राजा बनाया। किन्तु उस समय भूमण्डल पर, कोई भी नगर नहीं था। प्रजा वर्ग जंगलों में ही यत्र तत्र किसी प्रकार अपना जीवन निर्वाह करती थी। प्रजा की ऐसी दुर्व्यवस्था देखकर, श्रीमनुजी ब्रह्मलोकमें जाकर श्रीब्रह्माजीसे हाथ जोड़कर निवेदन किये कि-हे देव आपने हमें मृत्युलोकका राजा तो बना दिया है। किन्तु वहाँ पर ऐसा कोई नगर नहीं निर्माण किया है। कि जिसमें प्रजा भी सुख से रह सके, और मैं भी सुविधा पूर्वक प्रजा का पालन करते हुये, श्रृष्टि का संचालन कर सकूँ। यह सुनकर श्रीब्रह्माजी श्रीमनूजी को अपने साथ लेकर नित्य बैकुण्ठ में गये। चतुर्व्यूहों में प्रधान पर बासुदेवजी को, प्रणाम करके खड़े हो गये। तब श्रीबासुदेवजी ने पूछा कि-कहिये ब्रह्मन आप यहाँ इस दिव्य धाम में किस लिये आये हैं। श्रीब्रह्माजी ने कहा कि हे देव-आपकी आज्ञा से मैंने श्रृष्टि संचालन करने के लिये अपने पुत्र इन मनु को भूमण्डल का राजा बनाया। किन्तु वहाँ इनके रहने के लिये, कोई नगर नहीं है। जहाँ रहकर ये श्रृष्टि का संचालन कर सकें। अस्तु आपकोई एक नगर प्रदान करनेकी कृपा कीजिये। तब श्रीबासुदेवजी ने कहा कि-हमारे इस दिव्यधाम चतुर्पाद बिभूति अन्तरगत अनेकानेक दिव्य नगर हैं।

किन्तु इन सब नगरों में से सर्व श्रेष्ट श्रीसाकेतनगर, जिसका दूसरा नाम श्रीअवध है। जो सब बैकुण्ठों का आदि कारण है। मैं आपको प्रदान कर रहा हूँ। एक रूप से ये यहाँ भी रहेंगे। और दूसरे रूप से, आप की भक्ति भावना स्वीकार करने के लिये, भूमण्डल पर भी प्रगट होंगे। आप यहाँ से जाकर, विश्वकर्मा के द्वारा भूमण्डल पर, भारत भूमि में दिव्यरत्नमणियों से रचित रजतमयि पृथ्वी तथा स्वर्णमयि दिव्य नगर का निर्माण करवाइये। वहाँ पर वैदिक मंत्रों के द्वारा इन श्रीअवध का आवाहन करना, यह वहीं पर प्रगट हो जायेंगे। तब श्री-ब्रह्माजी उनको प्रणाम करके, ब्रह्मलोक में आकर श्रीगुरुदेवजी को आज्ञा दिये कि-तुम अपनेसाथ बिश्व कर्मा को लेकर, मृत्यलोक में जाकर भारत भूमि में, दिव्य नगर का निर्माण करवाकर वैदिक मन्त्रों से नित्य श्रीअवध धाम को आवाहन करके प्रतिष्ठा करदेना। और तुम भी वहीं पर रहकर, उपरोहित कर्म करना। तब श्रीगुरुदेव श्रीवशिष्टजी, विश्वकर्मा को अपने साथ लेकर, भूमण्डल पर यहाँ आकर, विश्वकर्मा के द्वारा अनुपम नगर का निर्माण करवा कर, श्रीअवधधाम को आवाहन करके, वैदिक ढङ्ग से प्रतिष्ठा करवाकर, स्वयं भी यहीं निवास करने लगे। हे प्रिये ! इस प्रकार श्रीअवधधाम की

उत्पति आप ने श्रवण की। अब महिमा भी सुनिये।

दोहाः—वैकुण्ठादिक लोक सब, यद्यपि परम पवित्र।
तिन सबते सौगुन प्रिये, अवध सुभूमि विचित्र ॥१॥

वार्ता:— हे श्रीप्राणप्रिया जू! इस अवध धाम की महिमा अपार तथा अनन्त है। यह धाम मुझे परम प्रिय है। यहाँ के रहने वाले चराचर जीव मुझे परम प्रिय लगते हैं। यद्यपि हमारे नाम, रूप, लीला, धाम सभी सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। इनमें से किसी एक का आश्रय ग्रहण करने वाला, मुझे प्राप्त हो जाता है। किन्तु हे प्रिये! इन सब में से धाम अधिक उदार है। ·ाम-रूप-लीला इनका आश्रय लेने वाले प्राणी को अपनी ओर से प्रयास करके उसका साधन करना पड़ता है। किन्तु धाम का अवलम्ब लेने वाले को अपने आप अनायास ही नाम रूप लीला का स्वाद भी मिलजाता है। और बिना ही श्रम यहाँ पर केवल रहकर शरीर त्यागने मात्र से ही, प्राणी उसी परम गति को प्राप्त होता है। जिस गति को नाम रूप-लीला का साधन करने वाले प्राप्त करते हैं। यहाँ पर निवास करना ही परम साधन है।

दोहाः—कोटि जन्म जब तपकरे, लहे दर्श एकबार।
किन्तु तासु महिमा अमित, वरणि को पावे पार ॥२॥

कोटि कल्प जगमें कदा, करै सु तप जब जीव।
पावै अवध निवास तब, प्रिये कृपा की सींव ॥३॥

वार्ता:--प्रिये ! कोटि जन्म तपस्या करने पर तो श्रीअवध का एकबार दर्शन ही हो पाता है। और कोटि कल्पों तक सुतप करने पर भी, आपकी कृपा के बिना यहाँ निवास होना असम्भव है।

दोहा:-मैं चाहौं जेहि को प्रिये, अपनावन करि प्यार।
वाको देउँ बसाय मैं, सन्तत अवध मझार ॥ ४ ॥
प्राणप्रिये बिन ममकृपा, करै प्रयत्न अपार।
पावै नहीं निवास कोउ, कबहूँ अवध मझार ॥५॥

वार्ता:--हे प्राणप्रियतमे ! जिस जीव को मैं अपना नित्य परिकर बनाना चाहता हूँ उसे श्रीअवध में अखण्ड निवास देता हूँ। जो इस अवध में आगया, वह अवश्य ही मेरे नित्यधाम, श्रीसाकेत की प्राप्ति करेगा। यहाँ रहनेवाला किसी भी प्रकार का पापात्मा प्राणी भी शरीरान्त के बाद मेरे परम धाम को प्राप्त होगा।

दोहा:-अवध निवासी जीव जो, सब जानिय मम रूप।
धाम उदार प्रभावते, पइहैं सहज स्वरूप ॥६॥

वार्ता:--हे प्रिये ! यह धाम सहज सच्चिदानन्द स्वरूप है।

राम नाम हि सत्य है बाकी असत्य है।

प्राकृतिक दृष्टि वाले व्यक्तियों को प्राकृतिक जैसा ही जान पड़ता है। परन्तु इसका वास्तविक स्वरूप तो आपकी कृपा से ही ज्ञात हो पाता है।

दोहाः—प्राणवल्लभे अवध की, महिमा अकथ अनूप।
याकी कृपा कटाक्ष जिव, पावत सहज स्वरूप।७॥

वार्ताः—हे श्रीप्रिया जू! जीव श्रीअवध धाम में किसी भी प्रकार आजाय और एन केन भाँति यहाँ निवास करने लगे। तो भी वह मुझे परम प्रिय लगता है।

दोहाः—सकृत जहाँ मम पग पड़त, महिमा तासु अपार।
अवधमाहिं सन्तत बसौं, करौं विनोद बिहार॥८॥
महिमा वर्णौं अवध की, को ऐसो मति मान।
तुम्हरी कृपा प्रसाद जिव, करै हृदय अनुमान॥९॥
जाके हृदय निकुञ्ज में, हम दोउ करैं विहार।
तव प्रभाव श्रीअवध को, दरशै बुद्धि मझार॥१०॥

प्रीतम का विनोद

2

(कवित्त)

ऐरी सखि कहती हो बार बार श्याम मुझे,
किन्तु सावधान निज मन में तो बिचारिये।
होतो मैं न श्याम गौरांगिनि सब रमातो कौन,
यही जिय जानि नेह नजर से निहारिये॥

मेरे नेत्रमाहिं हैं अनेक गुण सुनो री सखि,
याते प्रबल त्रास निज हिय ते बिसारिये।
कीजिये बिहार सुख पूर्वक हमारे साथ,
अट पट बोलि मम मन को न जारिये ॥

दोहाः—अरी सखी मम साथ में, रमन करै दिन रैन।
फिर क्यों देती दोष मोहिं, लाजत नहिं तव नैन ॥१॥

छन्द—ऐ सखियो ममदृगमें अतिगुण याको कोइकोइ जाने।
जेहिपर कृपा होय प्यारी की सोइ यह रस पहिचानै ॥१॥
याहीको लखि के रसवश भय सकल जनकपुरबासी।
ब्रह्मज्ञानमें रहे परायण जगते परम उदासी ॥ २ ॥
सोऊ निरखि नयन काजरयुत बिनगथ गये बिकाई।
तापरहू सजनी ममदृग लखि भय मानति अकुलाई ॥ ३ ॥
बड़े बड़े तपसी अरु योगी धर्म निरत विज्ञानी।
ममदृग की सुषमालखि तिनकी मतिगति सकल भुलानी॥४

3

(कवित्त)

ऐहो प्राण प्यारी सब सखी समाज सुनो,
सबने मोहिं फागुन में बहुत छकायो है।
सारी पहिराइ शिर चन्द्रिका लगाइ,
कटि लहँगा पहिराइ मोहिं नागरी बनायो है ॥

चूरी नथवेशर उर कंचुकी पहिराइ,
पगविछिया पहिराइ अंग रंगन रँगयो है।
घूँघट कढ़वायो सिय चरणन परवायो,
शिर चुनरी उढ़ाय मोहिं बहुत ही नचायो है॥१॥
तुमने ही ऐसे बहु चरित्र किये मेरे साथ,
उल्टे फिर हमहीं को दोष भी लगाती हो।
तनकससरमाओ कछु मनमें लजाओ तुम,
मनहर पिक नयनी वृथा वैन क्यों बनाती हो॥
हौं तो तव छवि लखि बिकानो बिनमोल सखि,
तू भी मम छवि लखि बिन मोल ही बिकाती है।
तो फिर गुनशील सुख शोभा खानि कहिये सखि,
अटपट अति बैन केहि कारण सुनाती है॥२॥
नयना लड़ाने की लगी है यदि चाह सखि,
तो फिर संकोच रहित नयना लड़ाइये।
भला या बुरा जो कोई कहे उसे कहने देहु,
नयना लड़ाने से तनक भी ना डराइये॥
नयना लड़ाने से तुम्हें यदि डर लगता सखि,
तो फिर निज नयन मूदि वहीं बैठ जाइये।
नहीं तो लड़ाओ दृग प्रेम से रँगीली सखि,
अथवा अपर सखियन बुलाय के भिड़ाइये॥३॥

* श्रीप्रियतम जू का प्रसाद *

दोहाः-ए मेरी प्रिय सहचरी, श्रवण करो मम वैन।
नित नव नव आनँद लहो, पगी परम सुख चैन ॥१॥
मैं सन्तत रहि संग में, नित नव करौं बिहार।
मेरी कृपा प्रसाद ते, पैइहो मोद अपार ॥२॥
जल बिहार कन्दुक कबहुँ, करौं तुम्हार संग।
शर्द पूर्णिमा रास रचि, रँगौं सबनि के रंग ॥३॥
सरयू सुतट निकट ललित, श्रीप्रमोदवन माहिं।
बहु विधि रास विलास करि, सबको सुखी कराहिं ॥४॥
रमि रमाय सब सखिन सँग, पुरबौं मनकी चाह।
याते पावो मोद सब, भरी परम उत्साह ॥५॥
धरि अंशन भुज सबनि के, नचि नचाय उमगाय।
लै लैतान अलाप मृदु, आनँद सिन्धु समाय ॥६॥
अलख निरंजन नाम मम, आगम निगम पुकार।
सो मिटि जावै रास में, बनौं सबनि हिय हार ॥७॥
रस सागर में सबनि सँग, डूबौं सबहिं डुबाय।
सब विधि दऊँ खिलाय ॥८॥
तुम सबके मानस कमल,सब विधि दऊँ खिलाय॥८॥

वार्ता:—ऐ सखियों ! मैं तो सर्वदा ही प्रेमियों के प्रेम में ही निवास करता हूँ। अस्तु मैं सर्वदा ही तुम सब के मन मन्दिर में, अपनी मधुर मंजु झाँकी का अवलोकन, कराता ही रहूँगा। इसलिये तुम सब किसी प्रकार का सोच नहीं करो। तुम्हारे नेत्रों में, चलते फिरते उठते बैठते, सोते जागते सभी अवस्थाओं में मुझसे संयोग रहेगा। मैं अपने प्रेमी को कभी पलभर भी भुलाने में समर्थ नहीं हूँ। तुम सबके प्रेम भाव ने मुझे बिना ही मोल खरीद लिया है। अस्तु मैं कभी भी तुम सबों से अलग नहीं रहूँगा केवल वाह्य दृष्टि से लोक लीलार्थ संयोग वियोग जान पड़ेगा—वास्तव में प्रेमी का मुझसे कभी भी वियोग नहीं होता है।

* चौबोला छन्द *

गिरिजा शम्भु भुसुण्डि खगेश्वर सवरी अरु कपिराऊ।
जामवन्त हनुमन्त बिभीषण जानत मोर सुभाऊ ॥ १ ॥
छोट जानि मेरे प्रेमी को जो कोउ गर्व दिखावै।
अतिसय बड़ो बनाऊँ वाको ब्रह्महुँ शीश झुकावै ॥ २ ॥
सिगरे लोकन माहिं लाडिली सब से तेहि पुजवाऊँ।
ब्रह्मादिक की कौन चलावै मैं ही शीश नवाऊँ ॥ ३ ॥
नाना रूप धरौं तिनके हित बन बन बिहरत बागौं।
कोटिन बिपति सहौं शिर ऊपर प्रेमी पर नहिं त्यागौं ॥४॥

जो सब दिशि ते मनबटोरि के बाँधै ममपद प्रीती।
तिनके संग सदा मैं डोलूँ है मेरी यह रीती ॥ ५॥
मेरे दर्शन हेत जीव जब एकहु पैर बढ़ावै।
मेरी कृपा प्रसाद हृदय में परमानन्द समावै ॥ ६॥
परिहरि आश जगत की जो जन करै सकृतमम आशा।
वाकी पूर्ण करूँ मैं सब रुचि बँध्यो प्रेम के पाशा ॥ ७॥
अस्तु अहो गुणशील उजागरि नटनागरि समुदाई।
तुम सब में हम हममें तुम सब बसो न विलग कदाई ॥ ८।

कोइ तन देता कोइ मन देता मैं ईश्वर ताई देता हूँ।
इस प्रेम देव के चरणों में भी तो झुका शिर देता हूँ ॥ १॥
कोइ काशी कोइ मथुरा जाये कोइ गंगा कोइ यमुना नहाये।
मैं भक्तों की रज तीरथ में अपना तनमन नित धोता हूँ॥२॥
कोइ राम कहे कोइ कृष्ण जपे कोइ हर गौरी हनुमान भजे।
मैं अपने मनकी माला में भक्तोंका नाम नित लेता हूँ ॥३॥
कोइ चाकर राजारानी का, कोइ तीन लोक सुख दानीका।
मैं भक्तों का ऋणियाँ चाकर उनके पीछे नित चलता हूँ ॥४
कोई जग वैभव दान करे कोइ दान पाय हर्षाय रहा।
मैं अपने भक्तों के ऊपर सर्वस्व निछावर करता हूँ ।५॥
मैं भक्तों के हिय में रहता सब भक्त हृदय मम बास करें।
नितनित नवनव लीला करके भक्तोंके सँग सुख लेता हूँ॥६॥

Amulya Kumar Gupta

जो मुझमें चित्त लगाता है वह निश्चय मम ढिग आता है।
वाकी रुचि सबविधि पूरणकर सन्तत अनुपम सुख देताहूँ॥७
कोइ लेना कोइ देना चाहे कोइ बनना कोइ मिटना चाहे।
मैं हँसता खेलता प्रेमानँद लीला की लहरें लेता हूँ॥ ८॥

❋ कजरी ❋

आयो सावन सरस सोहावन झूलन चलिये प्यारी ना।
चहुँ दिशि उमड़िघुमड़ि घनछायो रिमझिम वर्षत वारी ना॥
घन गर्जन सुनि नटहिं मोर बन बोलत कोयल प्यारी ना।
श्रीसरयू परि पूरि रहीं जल उठत तरंगैं भारी ना॥
निरखि प्रिया बिधुबदन तिहारोमम मनसुख अति भारीना।
बिजली चमकत मन्द सुगन्धित शीतल बहत बयारी ना॥
चहुँदिशि हरियालो बन छाई देखिय राज दुलारी ना।
हे गुणशील स्वरूप उजागरि झूलिय प्राणअधारी ना॥

बलिहारी बिहारी तेरी चितवनि की।
मंजुल मधुर मनोहर रसमय, प्रेम मयी मृदु मुसुकनि की॥
प्यार भरी प्रेमिन प्रमोद कर, नयन शयन हिय कर्षनि की।
रस सागर रस लम्पट रसिया, प्रेमिन के गर लिपटनि की॥
रूप रसिक गुणगण गर्बीले बुलकनि हुलकनि पुलकनि की।
अरुणअधर हियहर प्रियपावन, दशनदमक द्युति दमकनिकी
भौंह कमान नयन सर मारत, घायल हियबिच कसकनिकी।
हे गुणशील स्वरूप उजागर, मन मुद भर हिय हर्षनि की॥

❋ पुरजन उपदेश ❋

— ❋ —

श्रीरामजी:—हे समस्त पुरबासियों ! मेरे बचनों को सुनिये। मैं अपने हृदयमें कुछ अभिमान रखकर नहीं कहताहूँ। इसमें न तो कुछ अनीति की ही बात है, और न कुछ प्रभुता ही है। आपलोग पहले सावधान चित्त से, श्रवण करलीजिये। फिर जिसको, जैसा अच्छा लगे। वह उसी प्रकार करे।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुशासन मानै जोई॥
जौं अनीति कछु भाष्यौंभाई। तौ मोहिं बरजहु भय बिसराई॥

वार्ता:—बड़े भाग्य से प्राणी को, यह मानव शरीर प्राप्त होता है। यह देवताओं को भी प्राप्त होना दुर्लभ है। आगम निगम सभी सद ग्रन्थों ने यही कहा है। कि यह मानव देह सभी साधन का धाम, और मोक्ष का दरबाजाहै। इस शरीर को पाकर भी, जिसने परलोक को नहीं सम्हार पाया।

दोहा:—सो परत्र दुख पावइ, शिर धुनि पछिताय।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोस लगाय॥१॥

वार्ता:—हे भाइयो ! इस मानव देह का फल, केवल विषय भोग भोगना ही नहीं है। मृत्युलोक के सुखों की तो

बात ही कौन कहे, अपार सुख प्रदायक स्वर्ग भी थोड़े दिन के लिये ही सुखद होता है। अंतमें अत्यन्त दुख देनेवाला बनजाता है। इस मनुष्य शरीर को पाकर जो जीव, विषयमें मनको लगाते हैं। वे सठअमृत को त्यागकर, उसके बदले में बिष को ग्रहण करते हैं।

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परसमनि खोई॥
आकर चारिलाख चौरासी। जोनिभ्रमत यह जिवअविनासी॥

वार्ताः—माया की प्रवल प्रेरणा से, यह जीव काल, कर्म, स्वभाव, और गुणों के घेरा में घिराहुआ, संसार में सदा भटकता रहता है। बिना ही कारण कृपा करने वाले ईश्वर, जीव की अत्यन्त दुर्दशा देख कर, अपनी अपार करुणा के वशीभूत होकर, कभी इसे मानव देह देदेते हैं।

नरतन भव बारिधि कहँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सद्गुरु दृढ़नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥

दोहाः-जो न तरै भवसागर, नर समाज अस पाय।
सोकृत निन्दक मंद मति, आत्माहन गति जाय॥१॥

वार्ताः--जो इसलोक और परलोक में सुखी रहना चाहै, तो मेरे बचनों को सुनकर दृढ़ता पूर्वक हृदय में धारण करे। हे भाइयो! मेरी भक्ती का मार्ग, अत्यन्त सुलभ

तथा सुख देने वाला है। वेद, पुराण, शास्त्रोंमें इसका विशद विवेचन है। ज्ञान मार्ग अति कठिन है। फिर भी उसमें अनेक विघ्न हैं। कष्टप्रद साधन होने के कारण, और अवलम्बन होने से, साधक का मन ज्ञान मार्ग में ठीक से रुकने नहीं पाता है।

करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्तिहीन प्रिय मोहिं न सोऊ॥
भक्ति सुतंत्र सकल सुखखानी। बिनु सतसंग न पावै प्रानी॥

वार्ता:—समूहपुण्य के बिना सन्तों का दर्शन, तथा उनका सत्संग प्राप्त नहीं होता है। सन्तोंका समागम, सत्संग अविद्या जनित जन्ममरणका, अन्त करनेवाला है। जगमें एक ही पुण्य है, जिसके समान दूसरी नहीं है। सो यह है कि-मन, क्रम, बचन से ब्राह्मणों के चरणों की पूजा करे। उसपर देवता तथा मुनिजन प्रसन्न होकर उसके अनुकूल रहते हैं। जो कपट छोड़कर ब्राह्मणों की सेवा करता है।

दोहा:—औरउ एक गुप्त मत, सबहि कहौं करजोर।
शंकर भजन बिना नर, भगति न पावइ मोर॥ ३॥

वार्ता:—कहिये तो भक्तिमार्ग में कौन सा बहुत बड़ा प्रयास करना है। इस मार्ग में जोग, जप, तप, यज्ञ, तथा उपवास आदि भी तो करना नहीं पड़ता है। केवल सरल स्वभाव से, मनकी कुटिलता को त्यागकर,

जो कुछ भी प्राप्त हो जाय, उसी में सर्वदा सन्तोष रक्खे।

मोरदास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा विश्वासा॥
बहुत कहौं का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥

वार्ता:—न तो किसी से बैर बिरोध ही करे, न किसी से कुछ आशा राखे, और न किसी से डराय, उसके लिये सभी दिशायें, सुखमयी ही हैं। वह चाहे जहाँ बिचरण करे उसे दुख का स्वप्न भी देखना नहीं पड़ता। किसी भी कार्य को आरम्भ न करे, कहीं भी घर न बनावै, और मान पाने की इच्छा मन में नहीं करे। अर्थात् किसी भी कार्य में कर्त्ता, अपने को न मानै। कर्त्तव्य विचार कर ही कार्य करे। घर द्वार परिवार में अपनत्व नहीं मानै। अपनत्व ही दुख का मूल है। पाप नहीं करे, किसी पर क्रोध नहीं करे, सभी कार्यों में कुशल होकर बिज्ञान को प्राप्त करै।

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपवर्गा॥
भक्ति पक्ष हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई॥

दोहा:-ममगुन ग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह।
ताकर [illegible] सोइ जानइ, परानन्द सन्दोह॥ ४॥

भक्तों पर अनुग्रह

श्रीरामजी:--प्रिय सज्जनों मुझमें सम्भव असम्भव को कुछ
भी कल्पना मत करो । मैं कमल जाल में हाथी बाँध सकता हूँ ।
गोपद में पर्वत डुबा सकता हूँ मेरी गति का निर्णय क
ऐसी शक्ति किसी में भी नहीं है। तुम सभी संसारी चि
का त्याग कर मुझे पुकारो । हम तुम लोगों के सभी दुख
देंगे । पावन को भी परम पावन और मंगल का भी प
करने वाला मेरा परम मधुर नाम का सदा स्मरण करो
कुछ भी नहीं सोचो । चाहे तुम्हारे पैरों के नीचे से पृथ्वी
जाय, शिरपर आकाश टूटपड़े । फिर भी तुम किसी अन्य
देखकर, शान्ति पूर्वक दिन रात मेरे नामका स्मर
सब निश्चय ही हमारी गोद में हैं । मैं आप सबों
भावेन रक्षा कर रहा हूँ । मेरे भक्त तो सभी
चाहे कोई जीव सर्व साधन सम्पन्न हो । अथवा
से पीड़ित हो । चाहे सर्व साधन रहित हो, भजन भाव वि
समस्त आधि व्याधि ग्रसित, सभी भोगों के लिये
सभी रोग, शोक, से व्याकुल हो, किन्तु मेरा ना
पापी हो या पुण्यात्मा ब्राह्मण हो या चण्डाल, ज्ञानी हो
मूर्ख, परम निर्धन हो या सर्व ऐश्वर्य सम्पन्न, वालक युवा
कोई भी हो, सादर सप्रेम मेरा नाम लेने वाला निश्चय ही
प्राप्त होता है ।